Volume 1; Issue 2
April to Jun 2025

E-ISSN: 3048-8699

International Journal of History and Culture

Peer Reviewed Indexed Refereed Journal

Quarterly International Research Journal

International Journal of History and Culture
E-ISSN: 3048-8699
https://www.journalofhistory.in/
Volume 1; Issue 2; April to Jun 2025; Page No. 28-39
Peer Reviewed , Indexed and Refereed Journal

महात्मा गांधी जी के स्वदेशी संकल्पना की प्रासंगिकता समकालीन परिपेक्ष में

शोधार्थी
सोनाली सांगा
स्नातकोत्तर, इतिहास विभाग
विनोबा भावे, विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखंड

सारांश

गाँधी जी के लिए स्वदेशी साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष की केवल एक रणनीति मात्र नही थी बल्कि वह उनके तत्वज्ञान के लौकिक रूपान्तरण की प्रक्रिया की तार्क्रिक परिणति थी। यह अलग बात है कि साध्य और साधन की एकात्मकता के उनके आग्रह के कारण उनके आचार शास्त्र और रणनीति के मध्य विभेद करना न तो सार्थक है न ही संभव। स्वयं गाँधी जी के शब्दों में "स्वदेशी आत्मा का धर्म पर वह बिसर गया है। इससे उसके विषय में व्रत लेने की जरूरत रहती है। आत्मा के लिए स्वदेशी का अंतरिम अर्थ हमारे स्थूल संबंधों में आत्यान्तिक मुक्ति है। देह भी उसके लिये परदेशी है क्योंकि देह अन्य आत्माओं के साथ में एकता स्थापित करने में बाधक होती है, उसके मार्ग में विघ्न रूप है।" अतः आत्मा के धर्म से लौकिक आचार का नियम बनाने के क्रम में स्वदेशी की अभिव्यक्ति यूँ तो दृष्टिकोण और आचरण के प्रत्येक संदर्भ में होती है किन्तु इस विचार की अनुप्रयुक्ति का सर्वाधिक सटीक और प्रत्यक्ष संदर्भ आर्थिक होता है। गाँधी जी ने भी इस तथ्य का संज्ञान किया था। इसी कारण स्वदेशी गाँधी की विकेन्द्रीकृत आर्थिक प्रणाली की धारणा की आधारशिला है। तथ्य यह है कि स्थानीय उत्पादन और स्थानीय उपभोग पर आधारित विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था का प्रतिमान, स्वदेशी के प्रति प्रेम की नैतिक आधार भूमि पर ही कार्यशील हो सकता है।

मुख्य शब्द: **आन्दोलन, *स्वदेशी, स्थानीय उत्पादन, साध्य और साधन*** ।

महात्मा गाँधी ने अपनी "आत्मकथा" में लिखा है कि मुझे याद नहीं पड़ता कि सन् 1908 तक मैंने चरखा या करघा कहीं देखा हो। फिर भी मैंने हिन्द स्वराज्य में यह माना था कि चरखे के जरिए हिन्दुस्तान की कंगालियत मिट सकती है और यह तो सबके समझने वाली बात है कि जिस रास्ते से भुखमरी मिटेगी उसी रास्ते स्वराज्य मिलेगा। गाँधी जी ने कहा था कि जब वे 1915 में दक्षिण अफ्रीका से हिन्दुस्तान वापस आए तब भी उन्होने चरखे के दर्शन नहीं किये थे। आश्रम के खुलते ही उसमें करघा शुरू किया गया किन्तु सबसे बड़ी मुश्किल उसे चलाने की थी क्योंकि आश्रम में सब कलम चलाने वाले या व्यापार करना जानने वाले लोग थे, इनमें से कोई भी कारीगर नहीं था।[1] आगे चलकर मगनलाल गाँधी के प्रयासों के परिणाम स्वरूप आश्रम में एक के बाद एक नए–नए बुनने वाले तैयार हुए। अब आश्रमवासियों को अपने कपड़े खुद तैयार करके पहनने थे। अतः उन्होंने मिल के कपड़े पहनना बन्द कर दिया। उन सभी ने निश्चय किया कि वे हथकरघे पर देशी मिल के सूत का बुना हुआ कपड़ा पहनेगें।

ऐसा करने में मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला और साथ ही इन बुनकरों की समस्याओं का भी ज्ञान हुआ कि इन बुनकरों को किस प्रकार ठगा जाता है और किस प्रकार से दिन दिन कर्जदार होते जाते थे, इन सबकी जानकारी हमें मिली । गाँधी जी ने लिखा है कि हमारे द्वारा सब कपड़ा तुरन्त बनाया जा सके ऐसी स्थिति नहीं थी। इस कारण बाहर के बुनकरों से अपनी आवश्यकता का कपड़ा बुनवा लेना पड़ता था। देशी मिल के सूत का हाथ से बुना कपड़ा झट मिलता ही नहीं था।[2] बुनकर सारा अच्छा कपड़ा विलायती सूत का ही बुनते थे क्योंकि हमारी मिलें सूत कातती ही नहीं थी। बड़े प्रयत्न के बाद कुछ बुनकर हाथ लगे जिन्होने देशी सूत का कपड़ा बुन देने की मेहरबानी की। इन बुनकरों को आश्रम की तरफ से यह गारन्टी देनी पड़ी थी कि देशी सूत का बना हुआ कपड़ा खरीद लिया जायेगा। इस प्रकार विशेष रूप से तैयार कराया हुआ कपड़ा बुनवाकर हमने पहना। और मित्रों ने उसका प्रचार किया। इस प्रकार हम इन मिलों के अवैतनिक एजेण्ट बने। मिलों के सम्पर्क में आने पर उनकी व्यवस्था और उनकी लाचारी की जानकारी हमें मिली। वास्तव में इन मिलों

का उद्देश्य खुद कातकर खुद बुनना ही था।[3] वे हथकरघे की सहायता स्वेच्छा से नहीं, बल्कि अनिच्छा से करते थे।

गाँधी जी कहते हैं कि यह सब देखकर हम हाथ से कातने के लिए अधीर हो उठे। हमने देखा कि जब तक हाथ से कातेगें नहीं तब तक हमारी पराधीनता बनी रहेगी मिल के एजेण्ट बनकर हम देश की सेवा कर रहे हैं ऐसा हमें प्रतीत नहीं हुआ लेकिन इस मार्ग की सबसे बड़ी बाधा यह थी कि न तो कहीं चरखा मिलता था और न ही कहीं चरखे को चलाने वाला मिलता था। कुकड़ियां आदि भरने के चरखे तो हमारे पास थे, पर उन पर काता जा सकता था इसका तो हमें ख्याल ही नहीं था। एक बार कालीदास वकील एक बहन को खोजकर लाए। उन्होंने कहा कि यह बहन सूत कातकर दिखाएगी। उसके पास एक आश्रमवासी को भेजा जो इस विषय में कुछ बता सकता था, मैं पूछताछ किया करता था पर कातने का जारा इजारा तो स्त्री का ही था। अतएव ओने कोने में पड़ी हुई कातना जानने वाली स्त्री तो किसी स्त्री को ही मिल सकती थी।[4] सन् 1917 में मेरे गुजराती मित्र मुझे भड़ोच शिक्षा परिषद में घसीट ले गये थे। वहां महासाहसी विधवा बहन गंगाबाई मुझे मिलीं। वह पढ़ी लिखी अधिक नहीं थी पर उनमें हिम्मत और समझदारी साधारणतया जितनी शिक्षित बहनों में होती है उससे अधिक थी। उन्होंने अपने जीवन में अस्पृश्यता की जड़ काट डाली थी, वे बेधडक अंत्यजों से मिलती थी और उनकी सेवा करती थी। उनके पास पैसा था, पर उनकी अपनी आवश्यकताएँ बहुत कम थी। इन बहन का विशेष परिचय गोधरा की परिषद में प्राप्त हुआ। अपना दुःख मैंने उनके सामने रखा और दमयन्ती जिस तरह नल की खोज मे भटकती थी, उसी प्रकार चरखे की खोज में भटकने की प्रतिज्ञा करके उन्होंने मेरा बोझ हलका कर दिया।[5]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गाँधी ने स्वदेशी की केन्द्रीय इकाई गांव को ही माना था। इनको विकसित करने के लिए वे ग्रामदृष्टि के विकास के समर्थक थे। उनका मानना था कि इसी ग्राम दृष्टि से शोषण व हिंसा का मुकाबला किया जा सकता है। क्योंकि इसमें उत्पादन का आधार शारीरिक श्रम है। उन्होंने स्पष्ट किया था, "इन उद्योग धंधों में शरीर श्रम मुख्य चीज थी। विशाल यंत्रोद्योग उस समय नहीं थे। क्योंकि जब

मनुष्य हाथ से जोत सके, उतनी ही जमीन से संतोष मानता हो, तब वह दूसरे का शोषण नहीं कर सकता। हाथ के उद्योग में शोषण और गुलामी की गुजांइश ही नहीं है।[6]

गाँधी का मानना था कि उत्पादन की शैली श्रम आधारित होगी तो इससे बड़े पैमाने पर रोजगार उत्पन्न होंगे तथा श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। अतः प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक श्रम करना अनिवार्य होगा जिसे गाँधीय दृष्टि से 'ब्रेड लेबर' थ्योरी कहा जाता है।

अतः गाँधी के चिंतन में स्वदेशी का विचार आर्थिक दृष्टि के साथ–साथ अध्यात्म से भी जुड़ा हुआ है। गाँधी की दृष्टि सनातन परंपरा से संगत है। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया गया है। हर आश्रम में श्रम का महत्व है। श्रम उस आश्रम का स्वधर्म है। ब्रह्मचर्य आश्रम से आरंभ होकर संन्यास आश्रम तक श्रम से मुक्ति नहीं है। अतः श्रम आध्यात्मिक लक्ष्य अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का एक साधन है। इस रूप में गाँधी स्वदेशी को मानव जीवन के धर्म के रूप में महत्व देते हैं।[7] यहां धर्म से गाँधी का आशय मानवता की सेवा से था। स्वयं गाँधी के शब्दों में, "मेरे पास इस बात का ऐतिहासिक प्रमाण तो नहीं है, परन्तु मैंने हमेशा यहीं माना है कि भारतवर्ष में एक समय गांवों का अर्थतंत्र ऐसे निर्दोष अहिंसक उद्योग धंधों पर रचा गया था। वह मनुष्य के अधिकारों पर नहीं, बल्कि मनुष्य के धर्मों और फर्जों पर खड़ा था। ऐसे धंधों में लगे हुए लोग अपनी जीविका तो कमाते ही थे। इससे आगे बढ़कर उनके परिश्रम से सारे समाज का हित और कल्याण होता था। यही कारण था कि स्वदेशी को गाँधी ने अपने एकादश व्रतों में सम्मिलित किया था और इसे 'महाव्रत' की संज्ञा दी थी।

वास्तव में स्वदेशी के संदर्भ में स्वदेशी के संदर्भ में गाँधी की मुख्य दृष्टि उपयोग व सेवा की है। इसका अभिप्राय यह है कि जिन वस्तुओं का हम उपभोग कर रहे हैं, उनके प्रतिदान के रूप में हमें सेवा भी करनी आवश्यक है। जो वस्तुयें हम प्रकृति से प्राप्त करते हैं, उनकी एवज में हम प्रकृति को क्या दे रहे हैं और जो वस्तुयें हमें समाज से प्राप्त होती है, उनकी एवज में हम समाज को क्या दे रहे हैं– यह चिन्तन स्वदेशी का अवयव है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि गाँधी जिसे उपयोग व सेवा का दर्शन कहते थे, उसका अभिप्राय प्रकृति और

पर्यावरण के साथ दोस्ताना रिश्ता कायम करना था। इसके लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन प्रक्रिया प्रकृति के दोहन पर आधारित न हो। महात्मा गाँधी का यह सिद्धान्त वाक्य कि "यह पृथ्वी प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है लेकिन मनुष्य के लोभ को नहीं।" में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि उत्पादन का उद्देश्य अधिकतम उत्पादन करना है तो निश्चय ही वह प्रकृति के अन्धाधुंध दोहन पर आधारित होगा, जिसके परिणामस्वरूप नैसर्गिक संसाधन, जो कि अपरिमित नहीं है, समाप्त होते चले जाएंगे और पर्यावरण संकट का ऐसा दौर शुरू हो जायेगा, जिससे जीवन ही खतरे में पड़ जाएगा।[9] अतः गाँधी दर्शन में मनुष्य की भौतिक जरूरतों को लेकर मर्यादा की बात कहीं गई है लेकिन वर्तमान समय में हम विकास की चकाचौंध में प्रकृति की अनदेखी कर रहे हैं– उदाहरण के लिए आधुनिक अपनी ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए नाभिकीय संयंत्र की स्थापना करने लगे हैं परन्तु इनसे निकलने वाले रेडियशन से प्रकृति को होने वाले नुकसान को अनदेखा करने का परिणाम भी इन्हीं को झेलना पड़ता है। सन् 2011 में जापान में सूनामी ने जो तबाही मचाई उसके नाभिकीय संयंत्र से निकलने वाले रेडियेशन ने भी आग में घी का काम किया। वर्ष 2020 मे कोविड–19 ने जो विश्व में जो कहर भरपाया है यह मानवता के लिए एक अति खतरे की चेतावनी है। स्पष्ट है कि भूमण्डलीकरण के परिणामस्वरूप अपनाई गई उत्पादन की अधिकतम तकनीक व जीवन शैली के कारण मानव प्रकृति के साथ भी क्रूरतम व्यवहार करता है।[10] इस जीवन शैली से होने वाले खतरों को पहचानने में गाँधीजी ने अपनी दूरदृष्टि का परिचय काफी पहले ही अपनी कृति 'हिन्द स्वराज' में दे दिया था।

गाँधी की खास बात यह थी कि वे पूंजीवाद के विकास को एक पूर्व निर्धारित दिशा में बढ़ते हुए देखते थे। उनकी मान्यता थी कि एक सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में भूमण्डलीकरण आधुनिकता के जन्म के समय भी मौजुद था। 'हिन्द स्वराज' में दर्ज आधुनिकता की अपनी विख्यात आलोचना में गाँधी ने इतिहास के पूँजीवादी अग्रगमन की एक भविष्य दृष्टि पेश की थी। गाँधी की वे बातें एकदम सही साबित हुई हैं। गाँधी ने बड़े मौलिक ढ़ंग से कहा कि उपभोक्तावाद के धुआँधार प्रसार के मर्म में दरअसल अतिचार की प्रवृत्ति है।[11] उपभोक्तावाद अपने ही

पूर्वरूपों को खाकर विकसित होता है। कामनाएँ और मशीने इस कदर बढ़ती चली जाती है कि जीवन के अमूर्त और ठोस रूप उनके दैत्याकार जबड़े में समा जाते हैं।

स्वदेशी बनाम भूमण्डलीकरण :–

भारतीय दर्शन में भूमण्डलीकरण के समान ही **'वसुधैव कुटुम्बकम'** के विचार को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इसके अन्तर्गत समस्त विश्व को एक कुटुम्ब माना है तथा समूचे विश्व के विकास एवं उन्नति की कामना की गई है। स्वदेशी विचार भी इसी भावना को व्यक्त करता है। यद्यपि ये स्थानीयता का प्रेरक है परन्तु अंततः इसका उद्देश्य भी भावी विश्व समाज का निर्माण करना ही है। अतः भूमण्डलीकरण से इसका कोई विरोध नहीं होना चाहिए परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं है।[12] दोनों अवधारणाओं में निम्नलिखित भिन्नता दिखाई देती है। –

(1.) स्वदेशी में उत्पादन की मुख्य शैली शरीर श्रम को माना जाता है। इस उत्पादन शैली में प्रत्येक व्यक्ति को श्रम करना आवश्यक है। अतः विकेन्द्रित और सभी बालिग लोगों को उत्पादन प्रक्रिया में शामिल करने से निम्न लाभ होते हैं 1.) बड़े पैमाने पर रोजगार उत्पन्न होते हैं तथा श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ती है। 2.) उत्पादन प्रक्रिया में शामिल लोगों के मध्य आर्थिक व सामाजिक सम्बन्ध विकसित होते हैं, उनमें शोषण का तत्व कम होता चला जाता है। 3.) उत्पादन के साधनों की सामूहिक स्वामित्व की अवधारणा विकसित होती है, जिसके साथ–साथ वितरण और उपभोग की अहिंसक प्रक्रिया विकसित होती है।[13]

(2.) भूमण्डलीकरण में उत्पादन की मुख्य शैली तकनीक को माना जाता है। उत्पादन की इस व्यवस्था को श्रमिकों के एवज में मशीनों की प्राधान्यता बढ़ जाती है जिससे श्रमिक बेकार हो जाते हैं। इसके कारण श्रम बाजार में रोजगार की कोई संभावना नहीं रहती । इसके अतिरिक्त, मशीनों से अधिक मात्रा में होने वाले उत्पादन को खपाने की समस्या पैदा हो जाती है।

(3.) स्वदेशी में आवश्यकतानुसार उत्पादन करने पर बल दिया गया है। यह उत्पादन व उपभोग में सीधा रिश्ता स्थापित करती है। इस आधार पर यह मनुष्य के लोभ पर नियंत्रण लगाती है।

(4.) भूमण्डलीकरण में उत्पादन उपभोक्ताओं के अनुसार करने पर बल दिया जाता है। अर्थात् उत्पादन बुनियादी जरूरतों को ही पूरा करने के लिए नहीं अपितु नयी जरूरतों को पैदा करने के लिए किया जाता है जिससे अधिकाधिक मुनाफा कमाया जा सके। इसमें विज्ञापनों के जरिये नयी–नयी वस्तुओं के प्रति उपभोक्ता में रूचि पैदा की जाती है। जरूरतों को असीमित करने पर बाजार के पास यानि उत्पादकों के पास एक मौका इस तरह का मिलता है कि वे नयी जरूरतों पैदा करते हैं। एक वस्तु तैयार हो तो उसी के अनेक रूप जो मूलतः उसी गुण धर्म वाले हो, परन्तु उसकी रूप सज्जा बदल कर फिर पेश किया जाता है या छोटी मोटी उपयोगिता को जोड़कर उसे आधुनिकता का नाम देकर फिर बेचा जाता है।[14] आजकल 'बायबेक' की योजना के नाम पर साल दो साल पुरानी वस्तु को वापस खरीद कर नई वस्तु पेश की जाती है।

(5.) स्वदेशी लघुता में सौंदर्य की खोज है। इसमें छोटी इकाइयों के आर्थिक स्वावलम्बन पर इसलिए जोर दिया जाता है कि बिना स्वालम्बन की मिट्टी के शोषण से हम उन्हें बचा नहीं सकते। शोषण ही विषमता और अन्याय की जननी है। जबकि भूमण्डलीकरण विशाल तकनीक, विशाल कारखानों एवं विशाल उत्पादन पर बल देने के कारण केन्द्रीकरण का पोषक है जिससे शोषण और अन्याय में वृद्धि होती है।[15]

(6.) स्वदेशी उदात्त देशभक्ति से निकला हुआ विचार है। इसका सम्बन्ध राष्ट्रप्रेम की प्रखर भावना और आत्मनिर्भरता से है। एक व्यापक आधार वाली यह धारणा राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न पहलुओं को अपने में समाहित किये हुये हैं। कुछ लोग अन्तर्राष्ट्रीयता एवं विश्वबन्धुत्व के नाम पर 'स्वदेशी' को अत्यन्त स्वार्थपूर्ण सिद्धान्त भी कह देते हैं। उनके अनुसार यह युग असभ्यता के युग की ओर लौटने के बराबर है। लेकिन जो यह कहते हैं वे हैं– "जब मैं अपने कुटुम्ब की सेवा करने में भी समर्थ नहीं हूँ, तब सारे भारत की सेवा करने पर कमर कसने का विचार धृष्टता है।" अतः स्वदेशी अहिंसा व प्रेम के आचरण की कुंजी है। घृणा पर आधारित देशभक्ति "मारक" है तथा प्रेम पर आधारित देशभक्ति 'तारक' है। अतः स्वदेशी संकुचित एवं आक्रामक राष्ट्रवाद का पर्याय नहीं है अपितु स्वास्थ्य विश्व सम्बन्ध का प्रतीक है। इसके विपरित

भूमण्डलीकरण पड़ौसी की उपेक्षा कर स्वार्थपूर्ति पर बल देता है अतः यह स्वदेश प्रेम में बाधक है। यह राष्ट्रों को आत्मनिर्भरता की प्रेरणा देता है, अर्न्तनिर्भरता की नहीं। अतः यह संकीर्ण राष्ट्रीयता के विकास में सहायक है। यह प्रक्रिया अधिकाधिक उत्पादन को खपाने के लिए बाजारों की खोज करती है जिससे उपनिवेशवाद को बल मिलता है।[16] एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्रों पर प्रभुत्व स्थापित करने के प्रयास में विश्व में शोषण और हिंसा को बढ़ाता है जो अन्तर्राष्ट्रवाद में बाधक है।

(7.) स्वदेशी प्रकृति रक्षक है। इसमें मानवीय आवश्यकतओं को सीमित करने का आग्रह है जिससे प्रकृति का अनुचित दोहन न हो। इसमें चूंकि उत्पादन का उद्देश्य अधिकतम उत्पादन करना नहीं होता अपितु सीमित जरूरतों का उत्पादन स्थानिक स्तर पर करने का प्रयास किया जाता है। जब उत्पादन और उपभोग दोनों किसी सीमित क्षेत्र में होते हैं तो उत्पादन को अनिश्चित हद तक और किसी भी मूल्य तक बढ़ाने का लोभ नहीं रह जाता है। परन्तु भूमण्डलीकरण प्रकृति भक्षक है। इसमें मशीन व तकनीक का प्रयोग करके जो उत्पादन व्यवस्था बनाई जाती है, उससे प्राकृतिक संसाधनों का अपार नुकसान होता है। जंगल, जमीन और जल इन तीनों संसाधनों का मात्र दोहन, शोषण ही नहीं होता अपितु बड़े पैमाने पर प्रदूषण भी होता है।[17] इसका एक उदाहरण ले नई तकनीक, उत्पादन व्यवस्था के अन्तर्गत उद्योग के क्षेत्र में ऊर्जा का सघन प्रयोग कर, जो उत्पादन करती है उससे बड़ी मात्रा में कार्बन डाई ऑक्साईड (Co_2) गैस पैदा होती है जो जलवायु पर प्रतिकूल असर डालती है जिसका परिणाम आज मानव समाज भुगत रहा है। अतः प्रकृति दोहन से प्राकृतिक संसाधनों के विलुप्त होने के साथ–साथ पर्यावरण संकट पैदा होने का भी खतरा स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

(8.) स्वदेशी नैतिकता पर आधारित जीवन शैली का निर्माण करती है। इस प्रकार की जीवन शैली की प्रमुख विशेषता यह है कि जीवन में कुछ भी कृत्रिम या बनावटी नहीं होता। यह जीवन में **"सादा जीवन उच्च विचार"** को अपनाने की प्रेरणा देती है । स्वदेशी शोषण रहित अहिंसक भावना पर आधारित है जिसमें समाज का सक्रिय वर्ग अपनी कार्यक्षमता के अनुरूप संलग्न होता है इससे न सिर्फ सामाजिक मूल्य के रूप में श्रम की

प्रतिष्ठा बढ़ती है। बल्कि समाज के असक्षम समूह को भी सामाजिक सुरक्षा की गारण्टी प्राप्त होती है।[18] परिणामतः सादगी और सेवाभाव जो कि सहज मानवीय गुण है, वह लगातार विकसित होता जाता है।

भूमण्डलीकरण भौतिकवादी जीवन शैली है जो उपभोगवादी जीवन पर बल देती है। इसमें समाज के कमजोर तबकों की उपेक्षा की जाती है क्योंकि यह डार्विन के योग्यतम की जीविका सिद्धान्त में विश्वास करती है। अतः यह धारणा अन्य लोगों के कल्याण की अपेक्षा स्वयं के कल्याण का ही प्रयास करती है।

स्वदेशी एवं भूमण्डलीकरण के संदर्भ में उपरोक्त विश्लेषण के तहत कहा जा सकता है कि दोनों अवधारणाओं में दो ध्रुवों का अन्तर है। स्वदेशी जरूरतों पर आधारित और भूमण्डलीकरण लोभ, लालच पर आधारित है। अतः जरूरतें कितनी भी हो, उनकी अंतिम मर्यादा हो सकती है लेकिन लालच, लोभ तो अमर्यादा है। अतः भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया निरन्तर गतिमान रहती है एवं विभिन्न रूपों में मानव जीवन में प्रकट होती रहती है। एक समय में सैनिक सत्ता के अधीन उपनिवेश बनाये जाते थे। फिर व्यापार के माध्यम से उपनिवेशवाद को सुदृढ़ किया गया। आज नये उपनिवेशवाद को जागतिक आयाम दिया गया है ताकि यह पता नहीं चले कि कोई देश विशेष का साम्राज्य विस्तार हो रहा है।[19]

भूमण्डलीकरण के प्रतिरोध में स्वदेशी का प्रयोग इतिहास में होता रहा स्वदेशी को बहिष्कार के रूप में विश्व की प्रमुख स्वाधीनता क्रान्तियों में आजमाया गया है, चाहे वह अमरीका का स्वाधीनता संग्राम हो, जर्मनी व जापान का नवनिर्माण या चीन की क्रान्ति । बहिष्कार का शाब्दिक अर्थ है–"विदेशी वस्तुओं के प्रयोग को अस्वीकार करना।" यह अस्वीरोक्ति मात्र एक नैतिक कदम नहीं है बल्कि उस मानसिकता का भी परित्याग है,[20] जो विदेशी वस्तुओं के सेवन की श्रेष्ठता के साथ सम्बद्ध है।

भारतीय संदर्भ में स्वदेशी को चर्चित बनाने में गाँधी का विशेष योगदान है। स्वाधीनता आंदोलन में गाँधी ने न सिर्फ विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आंदोलन खड़ा किया था बल्कि जीवन के एक आवश्यक अवयव के रूप में स्वदेशी को रचनात्मक कार्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। गाँधी ने सविनय

अवज्ञा आंदोलन और असहयोग आंदोलन में स्वदेशी को समाहित किया था। स्वदेशी को गाँधी नैतिक शक्ति को प्राप्त करने का एक जरिया मानते थे। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि इस प्रकार के आंदोलन में नैतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए गुलामी की मानसिकता का परित्याग करना आवश्यक है। सन् 1920 में असहयोग आंदोलन की पूर्व संध्या पर गाँधी ने पटेल में उमर सोबानी की मिल के मैदान में विलायती कपड़ों की होली जलाते हुए कहा था, "मैं इस दिन को बम्बई के लिए एक पवित्र दिन मानता हूँ।" आज हम अपने शरीर से गंदगी हटा रहे हैं।[21] हम विदेशी वस्त्र को, जो हमारी गुलामी के चिन्ह है, त्यागकर अपना शुद्धिकरण कर रहे हैं। आज हम स्वतंत्रता (स्वराज) के मंदिर में प्रवेश पाने की योग्यता प्राप्त कर रहे हैं। वे अंग्रेज, अमेरिकन, जापानी और फ्रांसिस) हमारे यहां अपना कपड़ा तक तक भेजते रहेंगे, जब तक हम खरीदना पसंद करेंगे। जब हम विदेशी सुंदर चीजों पर लुब्ध होना बंद कर देंगे, तब हम विदेशी राष्ट्रों के प्रति दुर्भाव भी रखना छोड़ देंगे।" [22]

स्वदेशी की भावना के अनुरूप गाँधी ने स्वाधीनता आंदोलन में कुछ रचनात्मक आंदोलन भी प्रारंभ किये थे। जिसमें खादी और ग्रामोधोग, कुटीर उद्योगों का विस्तार, आरोग्य आंदोलन आदि प्रमुख रूप में शामिल है। संक्षेप में कहां जाये तो स्वदेशी गाँधी के स्वराज प्राप्ति का महत्वपूर्ण पहलू था।[23] गाँधी का स्वराज नीचे से शुरू होने वाली अवधारणा हैं, जिसकी बुनियाद सत्य और अहिंसा है तथा स्वदेशी, स्वराज जिसकी संरचनात्मक अवधारणा है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त आंकलन से स्पष्ट है कि स्वदेशी के सम्बन्ध में गाँधीय दृष्टि का आधार काफी विस्तृत है, जो स्वदेशी की अवधारणा को व्यापक रूप से नैतिकतापूर्ण जीवन शैली और विकास के वैकल्पिक मॉडल के रूप में स्थापित करने के लिए आवश्यक आधार है । यद्यपि गाँधीय युग के सामने सभ्यता व संस्कृति के निवर्तमान संकटों का गहरापन नहीं था, परन्तु उनकी दृष्टि में यह संकट वर्तमान सभ्यता का अन्तः निहित संरचनात्मक दोष है, जिसकी बुनियाद में शोषण एवं हिंसा है। निश्चय ही इससे मुक्ति का उपाय तो गाँधी के स्वदेशी दर्शन में ही है।[24] इस शोध अध्ययन का उद्देश्य स्वदेशी के महत्व को पुनः उजागर करना है एवं

भूमण्डलीकरण के नकारात्मक प्रभावों से मानवीय जीवन की रक्षा करना है क्योंकि सत्य को जितनी बार दुहरा सकें, दुहराते रहना चाहिये, शायद उसका प्रभाव दूरगामी सिद्ध हो जायें।

स्वतंत्रता काल के दौरान स्वदेशी से स्वराज्य प्राप्ति का एक प्रमुख माध्यम खादी था। खादी राष्ट्रीय अस्मिता, गौरव और समृद्धि की जीती जागती प्रतीक रही है ।[25] यह भारतीय संस्कृति का एक जीवन्त प्रमाण है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि देश के युवावर्ग खादी का प्रचार प्रसार करें व स्वयं इसे अपनाऐं। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक समारोह में खादी को बढ़ावा देने के लिए नारा दिया था "खादी फॉर नेशन, खादी फॉर फैशन" और लोगों ने अपील की थी कि खादी का कम से कम एक परिधान अवश्य खरीदें। गाँधी जी के अवतरण के डेढ़ शताब्दी वर्ष में गाँधी जी को याद करते हुए उनके विभिन्न विचारों एवं चिन्तन को योजनाओं एवं जीवनचर्या के रूप में प्रारंभ किया गया है[26]लेकिन भारत के महाशक्ति बनने के स्वप्न और लक्ष्य को देखते हुए जिस तेजी से अगले कुछ वर्षो में नये शहरों को विकसित करने की योजनाएं बन रही हैं उनसे एक मुख्य यक्ष प्रश्न उभरता है कि जब गाँव ही नहीं बचेंगे तो खादी और उससे जुड़े कुटीर उद्योगों का क्या होगा? साथ ही रोजगार सृजन में खादी की क्या कोई भूमिका होगी? अतः हम एवं आप तथा सरकार को खादी के लक्ष्य एवं उद्देश्य तथा दिशा का एक राष्ट्रव्यापी खाका खींचने की दिशा में आगे बढ़ने होगा तभी खादी राष्ट्रीय प्रगति में अपना बहुमूल्य योगदान कर सकती है।

संदर्भ सूची

1. गांधीजी, हिन्द स्वराज्य, अमृतलाल ठाकोरदास नाणावटी (हिन्दी अनुवाद), नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1949, पृष्ठ 221
2. वही, पृष्ठ 228
3. पी. सी. राय चौधरी, गजेटियर ऑफ इण्डिया, बिहार, रांची, 1970, पृष्ठ 112
4. वही, पृष्ठ 131 – 39
5. जय एस. सिंह, महात्मा गांधी के विधिशास्त्रीय सिद्धांतः सत्य, अहिंसा और प्रेम, दिशा इंटरनेशनल पब्लिसिंग हाउस, ग्रेटर नोयडा, 2018, पृष्ठ 187
6. वही, पृष्ठ 194

7. मोहनदास करमचन्द गांधी, गांधी वाण्ड्मय, खंड –28, (दिनांक – 8:10:1925), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1968, पृष्ठ 224 – 311

8. वही, पृष्ठ 246

9. रामचन्द्र गुहा, गांधी दी इयर्स दैट चैंज दी वर्ल्ड : 1914–1948, पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया, गुड़गांव, 2018, पृष्ठ 199

10. वही, पृष्ठ 247

11.वही, पृष्ठ 251

12.गांधीजी, मेरे सपनों का भारत, आर. के. प्रभु (संग्राहक) नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1960, पृष्ठ 135

13.वही, पृष्ठ166

14. एम. के. गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1957, पृष्ठ 195

15.गांधीजी, हिन्द स्वराज्य, अमृतलाल ठाकोरदास नाणावटी (हिन्दी अनुवाद), नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1949, पृष्ठ 44

16. वही, पृष्ठ 42

17. वही, पृष्ठ 47

18. श्याम बहादुर 'नम्र, गांधी विचार पर अमल के कुछ अनुभव, समीर बनर्जी एवं अमन नम्र (संपादित), संगठन, शक्तिवर्धन और गांधी विचार, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला, 1999, पृष्ठ 105

19. वही, पृष्ठ 122

20. मोहनदास करमचन्द गांधी, गांधी वाण्ड्मय, खंड –28, (दिनांक – 8:10:1925), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1968, पृष्ठ 306–308

21.वही, पृष्ठ 155

22. कालिकिंकर दत्त, बिहार में स्वातंत्र्य आन्दोलन का इतिहास, खंड ग्रंथ अकादमी, पटना, 2014, पृष्ठ 218

23., पृष्ठ 221

24.किशोरलाल घ. मशरूवाला, गांधी विचार–दोहन, सस्ता साहित्य मंडल, नई 2011, दिल्ली, पृष्ठ 22

25. गांधीजी, हिन्द स्वराज्य, पूर्वोक्त, पृष्ठ 142

26.वही, पृष्ठ 149